International Journal of Multidisciplinary Horizon

ISSN:3049-2017
IJMH 2025; 2(1): 51-56
© 2025 IJMH
www.themultijournal.com
Received: 10-02-2025
Accepted: 12-02-2025
Publish : 17-02-2025

अनुपम आनन्द
असिस्टेंट प्रोफेसर (विजिटिंग),
गुरुग्राम विश्वविद्यालय, गुरुग्राम

.

Correspondence:
अनुपम आनन्द
असिस्टेंट प्रोफेसर (विजिटिंग),
गुरुग्राम विश्वविद्यालय, गुरुग्राम

राजतरङ्गिणी के आलोक में काश्मीर का राजशास्त्रीय चिन्तन

अनुपम आनन्द

शोध-सार- काश्मीर में राजतरङ्गिणी की एक विशिष्ट परम्परा प्राप्त होती है, जिसका प्रारम्भ कल्हण द्वारा किया गया है। इतिहास लेखन की आधुनिक दृष्टि राजतरङ्गिणी सर्वप्रथम मान्य ग्रन्थ कही जाती है। कल्हण के उपरान्त जोनराज, श्रीवर एवं शुक की रचनाएँ भी इस नाम से प्राप्त होती हैं। काश्मीर के तात्कालिक परिदृश्य का सम्पूर्ण विवरण यहाँ प्राप्त होता है। काश्मीर के इस कालक्रम में हिन्दू के अतिरिक्त, तिब्बती एवं मुस्लिम सुल्तानों का भी उल्लेख यहाँ प्राप्त होता है। इन ग्रन्थों में राजवंश, राजाओं का विवरण, राजव्यवस्था, प्रजा की स्थिति आदि सहित तात्कालिक राजनीति की भी विस्तृत व्याख्या की गई है।

कूट शब्द- श्रीवर राज., कल्हण राज., मनु., जौनराज., कौ. अर्थ.,

भूमिका- काश्मीर की प्राचीन तथा मध्यकालीन राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, भौगोलिक आदि परिस्थितियों के विश्लेषण के निमित्त वहाँ के ग्रन्थों का समालोचन अनिवार्य एवं अपरिहार्य है। तद्विषयक काश्मीर के मुख्य ऐतिहासिक संस्कृत ग्रन्थों को चार विभागों में विभाजित किया जा सकता है-

(क) कल्हण, जोनराज, श्रीवर एवं शुक विरचित राजतरङ्गिणी
(ख) सोमदेव विरचित कथासरितसागर, बिल्हण विरचित विक्रमाङ्कदेवचरित, शम्भूकवि कृत राजेन्द्रकर्णपूर तथा श्रीमंख कृत श्रीकण्ठचरित
(ग) नीलमत पुराण, वासुकि पुराण, भृङ्गीशसंहिता
(घ) कवि क्षेमेन्द्र के विविध ग्रन्थ।

राजतरङ्गिणी- संस्कृत की ऐतिहासिक काव्यलेखन की परम्परा का प्रारम्भ यद्यपि वेदों से ही माना जाता है तथापि रामायण एवं महाभारत इस रूप में अधिक प्रसिद्ध रहे। यही कारण है कि कालान्तर में कालिदास प्रभृति अन्याय कवियों ने अपनी रचनाओं में इनमें वर्णित कथाओं का ही विस्तार किया। पुराणों में वर्णित इतिहास भी ऐतिहासिक काव्यलेखन की परम्परा में अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। तथापि इतिहास-लेखन की वर्तमान धारा में ये काव्य उत्कृष्ट नहीं माने जाते। ऐतिहासिक साक्ष्यों की आधुनिक दृष्टि में कल्हण की राजतरङ्गिणी ही सर्वप्रथम मान्य ग्रन्थ कही जाती है।

काश्मीर में राजतरङ्गिणी की एक विशिष्ट परम्परा प्राप्त होती है, जिसका प्रारम्भ कल्हण द्वारा किया गया एवं कवियों ने इसी का अनुगमन किया। अध्यायों का नामकरण यहाँ तरङ्ग है तथा विभिन्न कालक्रम के राजवंशों का वर्णन होने के कारण इसे 'राजतरङ्गिणी' यह विशेष संज्ञा दी गयी। कल्हण के उपरान्त जोनराज, श्रीवर एवं शुक की रचनाएँ भी इस नाम से प्राप्त होती हैं। प्राज्यभट्ट की राजतरङ्गिणी का उल्लेख यत्र -तत्र है, किन्तु यह रचना अप्राप्य है।

कल्हण की राजतरङ्गिणी में कवि ने आदि काल से 1151 ई. तक काश्मीर के प्रत्येक राजा के शासन काल की घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण श्लोकों के रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों एवं घटनाओं का क्रमबद्ध वर्णन है। राजतरङ्गिणी आठ तरङ्गों में विभाजित है, जिसमें कुल 7826 श्लोक हैं। प्रत्येक तरङ्ग का आरम्भ शिव और पार्वती जी की स्तुति से किया गया है। द्वितीय राजतरङ्गिणी के रचियता **जोनराज** हैं। जोनराज ने राजतरङ्गिणी के सातवें श्लोक में अपना नाम दिया है। यह सुलतान जैनुल आब्दीन के आश्रित कवि थे। जोनराज ने राजतरङ्गिणी में 1146 ई. से 1456 ई. तक के काश्मीर के राजाओं का इतिहास लिखा है। उसमें 1146 ई. से 1336 ई. तक के हिन्दू राजाओं का

और 1336 ई. से 1456 ई. तक के काश्मीर के सुल्तानों का इतिहास लिखा है। उसने कुल 23 शासकों का वर्णन किया है उनमें से तेरह हिन्दू, एक भौट तथा नौ सुल्तान हैं। तृतीय राजतरङ्गिणी के रचयिता **श्रीवर** हैं। ये जोनराज के शिष्य थे।[1] श्रीवर की राजतरङ्गिणी में सुलतान जैनुल आब्दीन, उसके पुत्र हैदरशाह और पौत्र हसनशाह के राज्यकाल का वर्णन है। जोनराज के पश्चात् श्रीवर ने 1456 ई. से 1486 ई. के बीच के इतिहास की रचना की थी। प्राज्यभट्ट का इतिहास अप्राप्य है। तत्पश्चात् **शुक** ने 1596 ई. तक का इतिहास अपनी राजतरङ्गिणी में लिखा । शुक की यह अंतिम एवं चतुर्थ राजतरङ्गिणी है। शुक के पश्चात् काश्मीर में राजतरङ्गिणी की रचना विशृंखलित हो गई।

राजतरङ्गिणी में वर्णित राजव्यवस्था- काश्मीर की राजव्यवस्था का अनुशीलन अधोलिखित रूप में किया जा सकता है-

1. **राजा**
2. **अमात्य (मन्त्री)**
3. **न्याय (दण्ड) व्यवस्था**
4. **बल(सेना)**

1.राजा- राज्य की कल्पना राजा के बिना करना सम्भव नहीं है। राज्य की सप्त-प्रकृतियों में राजा को प्रथम स्थान दिया गया है। शुक ने राजा को राज्यरूपी शरीर का मस्तक माना है-

स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गवलानि च ।
सप्तांगमुच्यते राज्यंतत्रमूर्धानृपः स्मृतः।।[2]

राजा के बिना राज्य सुरक्षित नहीं रह सकता, प्रजा पीड़ित तथा उद्विग्न हो जाती है और यज्ञ, अध्ययनादि सभी कार्य अवरुद्ध हो जाते हैं, इसलिए राज्य अथवा राष्ट्र एवं प्रजा की रक्षा हेतु शासक का होना नितान्त आवश्यक है।

राजा के महत्व को व्यक्त करने वाले अनेकों उदाहरण कल्हण की राजतरङ्गिणी में प्राप्त होते हैं। राजा के अभाव में उत्पन्न होने वाली प्रजा की भयावह स्थिति का चित्रण भी प्रस्तुत किया गया है। राजा की अनुपस्थिति में राज्य में दैवी और मानुषी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं-

तस्मिन्विरजसि प्राज्यमाक्रामति नृपासनम् ।
आचक्राम प्रजा व्यापन्न देवी न च मानुषीः ।।[3]

राजा के न रहने पर सर्वत्र मात्स्यन्याय का प्राबल्य हो जाता है। शक्तिशाली दुर्बलों का शोषण करने लगते हैं, प्रजा दस्यु आदि के आक्रमणों से सुरक्षित नहीं रहती, हिंसा के आधिक्य के कारण आतङ्कित प्रजा हाहाकार कर उठती है-

तस्कराक्रान्त्यशरणं बलवन्निहताबलम् ।
अराजकमिवाशेष राष्ट्र कष्टा दशामगात् ।।[4]

श्रीवर भी धर्मशास्त्र के इस उक्ति का समर्थन करते हुए कहते हैं कि शासक विहीन राज्य में मार्ग से आक्रान्त हो जाते हैं और बलवान् निर्बलों का हनन करने लगते हैं-

तस्कराक्रन्तपथको बलवन्निहताबलः ।
अराजक इयानीशो देशः कष्टा दशामगात्।।[5]

दैवीय सिद्धान्त- राजाओं के दैवीकरण के विषय में धर्मशास्त्रों व पुराणों में उल्लेख मिलता है।[6] कल्हण की राजतरङ्गिणी में एक उद्धरण है जहाँ हमें काश्मीर में राजतन्त्र के दैवीकरण का आभास मिलता है। जिसमें कल्हण कहते हैं कि राजा दामोदर की विधवा गर्भवती स्त्री यशोमती देवी के ब्राह्मणों द्वारा राज्याभिषेक का अपने मन्त्रिमण्डल द्वारा विरोध करने पर श्रीकृष्ण की इस उक्ति का सन्दर्भ उपस्थापित किया जाता है जिसमें काश्मीर देश को पार्वती का और यहाँ के राजा साक्षात् शिव कहा गया है-

कश्मीराः पार्वती तत्र राजा ज्ञेयो हरांशजः ।
नावज्ञेयः स दुष्टोऽपि विदुषा भूतिमिच्छता ।।[7]

कल्हण ने एक स्थान पर राजा की तुलना नन्दीश से की है और दूसरे स्थान पर राजा को राक्षस का अवतार माना है। धूर्तो एवं बन्दीजनों के मुख से बारम्बार अपनी प्रशंसा सुनकर व उस स्मृति से आत्ममुग्ध होकर राजा चक्रवर्मा स्वयं को देवता समझता हुआ विवेक के विपरीत कार्य करने लगा।[8]

राजा के गुण तथा उसके महत्व का ध्यान रखते हुए कल्हण अपने राजा की तुलना सूर्य से करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार सूर्य उदय और अस्ताचल के समय रक्त वर्ण को धारण करता है उसी प्रकार जो राजा सुख और दुःख दोनों परिस्थितियों में उग्र तेज धारण किए रहता है वही वन्दनीय होता है। जिस राज्य का राजा विपत्ति में पड़कर भी प्रजा की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझता है वहाँ की प्रजा का भी कर्तव्य है कि वह प्राण की आहुति देकर भी अपने स्वामी की रक्षा करे-

शोभते रूधिराताग्रमण्डलाग्रो यथोदये।
तथा योऽस्तमये भास्वानिववन्ध स भूपतिः ।।
स जगज्जीवितेनापि रक्षणीयः क्षमापतिः ।
पदे पदे विपन्मग्नः प्रजोद्धरणधीरधीः ।।[9]

जोनराज भी अपनी राजतरङ्गिणी में विचारहीन राजा को मूर्ख बताते हैं। उपर्युक्त उदाहरणों से यह कहा जा सकता है कि राजा को दैवीय कृत्यों के कारण अपनाया जाता था न कि दैवी अधिकार के कारण।

राजप्रासाद- कल्हण ने काश्मीर के वैभवपूर्ण राजमहलों का अनेकों स्थलों पर वर्णन किया है। हर्ष के अनेकों स्वर्णमण्डित महल भव्यता एवं दिव्यता के प्रतीक थे। उसके आनन्द से परिपूर्ण महल में रंग-बिरंगे तथा सुन्दर वस्त्रों, सुवर्ण के अलङ्कार से रहित एवं अल्पसेवकों वाला कोई भी व्यक्ति नहीं दिखाई देता था।[10] राजा, रानियों, युवराजों तथा राजकुमारियों सबके पृथक-पृथक महल होते थे। जौनराज ने भी अपनी राजतरङ्गिणी में जैनुल आबदीन के सुन्दर, मनोहारी एवं भव्य राजनिवास का वर्णन किया है-

शैलपीठ विधायोच्चैर्जयापीडपुरान्तरे।
सरस्तीर्थे मनोहारि राजवास स्वकंव्यधात्।।[11]

राजदरबार (राजसभा)- धर्मशास्त्रों में राजकार्य के निर्वहन के लिए राजदरबार की महत्वपूर्ण भूमिका कही गयी है। कल्हण ने राजसभा का उल्लेख अपनी राजतरङ्गिणी में किया है जिसको सभा कहते थे। उसके सदस्यों को सभ्य कहा जाता था।[12] सभा का उल्लेख सर्वप्रथम सन्धिमति के समय मिलता है।[13] सन्धिमति राज्यत्याग करने लगे तो उन्होंने पहले सभा आहूत की। काश्मीर का राज्य सभा को लौटाकर उन्होंने वनगमन किया-

अन्येधुः प्रकृतीः सर्वासंनिपत्य सभान्तरे ।
ताभ्यः प्रत्यर्पयन्यासमिव राज्यं सुरक्षितम् ।।[14]

सभा राजदरबार में आयोजित की जाती थी और उस सभा में राज्य के प्रमुख मन्त्रियों के साथ-साथ अन्य बुद्धिजीवी भी होते थे जैसे पुरोहित आदि। कल्हण विक्रमादित्य की सभा का उल्लेख मातृगुप्त के प्रसङ्ग में करते हैं। राजा विक्रमादित्य चतुर राजा थे। प्रजा में उनके प्रति प्रेम, स्नेह और सम्मान की भावना विद्यमान थी। उनके सेवक उनके लिए सहर्ष कष्ट उठाते थे। राजा के राजदरबार के मन्त्रियों में कोई भी ऐसा नहीं था जिसकी मिथ्याख्याति हो। वे सेवक अश्लील भाषाभाषी, हास-परिहास में हृदय पर घात करने वाले एवं अन्य पुरुषों का राजदरबार में प्रवेश असह्य समझने वाले नहीं थे।[15] इस कारण कवि मातृगुप्त सदैव विचार करते रहे कि पूर्वकृत पुण्योदय से ही ऐसा सेव्य राजा मिला है।

हर्ष के काल में काश्मीर राजदरबार का वैभव अपने शिखर पर था। उनके दरबार में सभी व्यक्ति उत्तम वस्त्र एवं आभूषण के आते थे। सिंहद्वार पर नित्य असंख्य आकाँक्षी दिखते थे।

सुल्तानों (मुस्लिम) के शासन के समय इस विषय पर केवल काज़ी, शेखुल इस्लाम आदि मन्त्रणा दे सकते थे, जिसको मानने के लिए भी सुल्तान बाध्य नहीं होता था। कहा जा सकता है कि उस समय का शासक निरङ्कुश था। अनेकों ऐसे परिवर्तन हुए जो हिन्दू-शासन काल में अनिवार्य था, परन्तु मुस्लिम-शासन में समाप्त हो गये। यथा प्रजा को हिन्दूशासन में राजा के निर्वाचन का अधिकार था और वह वैध भी माना जाता था, जिसका सन्दर्भ राजतरङ्गिणी में अनेकों स्थानों पर आया है।[16] मुस्लिम काल में सल्तनत में यह पद्धति समाप्त हो गई।

राजसभा में छल से वध कराने के उद्धरण काश्मीर में प्रायः प्राप्त होते हैं। हैदरशाह को हसन आदि पाँच-छह व्यक्तियों पर सन्देह हो जाता है कि वह बड़े भाई आदम खाँ से सन्निकटता रखते हैं। इसलिए उसने सबका अपने भृत्यों द्वारा राजधानी में मण्डप के मध्य विश्वास उत्पन्न कर छल से वध करा दिया। श्रीवर लिखते हैं कि हसन शाह के समय सभा पनप नहीं सकी। देश में किसी प्रकार के आतङ्क की आशङ्का न होने पर, सुल्तान व्यसनी एवं रसिक हो गए तथा सभा भी राज-कार्य के स्थान पर व्यसनों में लिप्त हो गई-

कृते निष्कण्टके देशे मल्लिकाादसन्ततः ।
प्रतिष्ठारसिको राजा तत्सभा च तदाभवत् ।।[17]

मुस्लिम शासकों की सभा अत्यन्त अल्पकाल में ही स्वप्नोपम हो गयी।

या कारकसभा रम्याभवन्मौलमहीभुजाम्।
अचिरेणैव कालेन सर्वा स्वप्नोपमाभवत् ।।[18]

मुहम्मद शाह के समय में सभा का नाममात्र शेष रहा। उसमें कोई भी अपने विचार प्रकट करने को स्वतन्त्र नहीं था। यदि धर्मबुद्धि से दीनरक्षा हेतु कोई प्रवृत्त होता तो राजसभा में ही वह अधिकारियों एवं मन्त्रियों की अभद्रता का पात्र बनता था।[19] अतः यह स्पष्ट है कि सभा दुर्बल हो गई थी उसका अवशेष मात्र रह गया था।

2.अमात्य(मन्त्री)- प्राचीन काल से ही भारतीय राजनीतिज्ञों एवं राजनीतिक विचारकों ने राज्य के सात अङ्ग-राजा, अमात्य, कोष, जन, बल, मित्र, एवं दुर्ग स्वीकार किये हैं। भारतीय राजशास्त्र-प्रणेताओं ने मन्त्री को राजा उपरान्त द्वितीय स्थान प्रदान किया है। सभी धर्मशास्त्र मन्त्री पद के महत्व को स्वीकार करते हैं। कौटिल्य के अनुसार मन्त्रियों के बिना राजा का कोई अस्तित्व नहीं । राजा तभी राज्य का सफलतापूर्वक सञ्चालन कर सकता है जब उसे योग्य एवं बुद्धिमान मन्त्रियों की सहायता प्राप्त हो, क्योंकि राजा और मन्त्री साम्राज्य रूपी शकट के दो चक्र हैं जिनके बिना शकट अग्रगामी नहीं हो सकता-

सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते ।
कुर्वीत सचिवांस्तस्मातेषां च शृणुयान्मतम्।।[20]

चाणक्य ने मन्त्री पद का महत्व बताते हुए कहा है कि दो आँखों वाला होते हुए भी इन्द्र को सहस्राक्षा कहे जाने का कारण उसके मन्त्रिपरिषद के एक सहस्त्र बुद्धिमान सदस्य थे जो उसके नेत्र समझे जाते थे-

इन्द्रस्य हि मन्त्रिपरिषदृषीणां सहस्त्रम् ।
स तच्चक्षुः तस्यादिमं द्वयक्ष सहस्वाक्षमाहुः।।[21]

काश्मीर के संस्कृत महाकाव्यों में मन्त्रियों के महत्व को अनेकों स्थलों पर व्यक्त किया गया है। कल्हण के अनुसार राजा मन्त्री की सहायता के बिना राज्य का सञ्चालन नहीं कर सकता। राज्यकार्य सुचारु रूप से चलाने में मन्त्री राजा के सहायक होते हैं-

एवं दैवोपनीतानामख्यातीनां चिकित्सितम् ।
स्वधियामात्यबुद्ध्या वा पारमेति मतस्विनाम् ।।[22]

निर्वैर भाव से प्रजा के योग-क्षेम का व्यवहार मन्त्रियों का कर्तव्य है एवं प्रेमपूर्वक प्रजा का पालन करना राजा का दायित्व-

पत्यौ भक्तिव्रतं स्त्रीणामद्रोहो मन्त्रिणां व्रतम् ।
प्रजानुपालनेऽनन्यकर्मता भूभृतां व्रतम् ।।[23]

महाभारत में भी यह प्रसङ्ग आया है कि राजा मन्त्री पर उसी प्रकार निर्भर रहता है जैसे पशु बादलों पर, ब्राह्मण वेदों पर तथा स्त्रियाँ अपने पति पर। कल्हण ने मन्त्रियों के समूह हेतु मन्त्रिपरिषद् अथव मन्त्रिसभा शब्द का प्रयोग किया है, जबकि पृथक् रूप से मन्त्री के लिए अमात्य, सचिव तथा मन्त्रिण शब्दों का प्रयोग किया है।[24] एकाकी होने पर भी जो सचिव स्वामी के कार्य में मूढता नहीं करता और बहुतों के अपने अधीन होने पर भी जो रोष एवं उदासीनता का व्यवहार नहीं करता तथा जो अपने कपटरहित स्वभाव से स्वामी का कार्य सिद्ध करने के लिए सदैव तत्पर रहता है, ऐसा राजा अत्यधिक पुण्य से ही सम्भव होता है-

एकाकी यः किल न भजते मूढतां भूर्तकायै।
नौदासीन्यं श्रयति च रुषा बहवधीने च तस्मिन् ।।
निर्हेवाकव्यवहृतितया साध्यसिद्धिं किलेच्छस्ता ।
दृंमन्त्री प्रभवति परं नाल्य पुण्यस्य राज्ञः।।[25]

काश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा के विषय में यह उल्लेख मिलता है कि आदेश देते तथा उसे ग्रहण करते समय उसमें एवं उसके मन्त्री में क्रमशः स्वामी-सेवक सम्बन्ध हो जाता था।[26] सम्राट को भी मन्त्री के सेवक रूप में वर्णित करते हुए कल्हण स्पष्टतः मन्त्रिपद के महत्व को प्रतिपादित करते हैं। कल्हण व्यक्त करते हैं कि कृतज्ञ तथा क्षमावान् राजा और अनुरक्त एवं विनयी सेवक इन दोनों का अनश्वर संयोग बड़े पुण्यों से प्राप्त होता है।

श्रीवर ने भी ऐसा ही कहा है, उनके अनुसार इस प्रकार के राजा और मन्त्री का सायुज्य प्रजा के पुण्यों से होता है।[27] जोनराज ने सचिव की तुलना सखा से की है उनके अनुसार सबकी अपेक्षा राजा की बुद्धि उत्तम होती है तथापि हित तथा अहित का निर्णय सचिव ही करते हैं।[28]

मन्त्रिमण्डल में मन्त्रियों की संख्या के विषय में कल्हण थोड़ा भ्रम उत्पन्न करते हैं। कल्हण ने एक स्थान पर एक राजा के पाँच मन्त्रियों का उल्लेख किया है। वहीं दूसरे स्थल पर राजा संग्रामराज (1003-28 ई.) के समय श्रीधर के सात पुत्र जो तुङ्ग के विरुद्ध युद्ध करने आये थे यह कहा है। इससे भ्रम उत्पन्न होता है परन्तु अर्थशास्त्र में 'यथासामर्थ्यम्' शब्द प्रयुक्त हुआ है जो इस भ्रम को निर्मूल सिद्ध करता है। कौटिल्य तथा अग्निपुराण के अनुसार यह संख्या राज्य की आवश्यकता के अनुरूप और एक से अधिक होनी चाहिए। राजा जलौक के शासन-काल तक काश्मीर में सात मन्त्री थे -

धर्माध्यक्षो धनाध्यक्षः कोशाध्यक्षश्रचमूपतिः ।
दूतः पुरोधा दैवज्ञः सप्त प्रकृतयोभवन् ।।[29]

मन्त्रियों का गुणी होना भी उतना ही आवश्यक है जितना राजा का प्रजारञ्जक होना। कौटिल्य के अनुसार मन्त्री स्वदेशी, सत्कुलीन, कलानिपुण, बुद्धिमान, चतुर, वाक्पटु, प्रभावशाली, सहिष्णु, पवित्र, मित्रता के योग्य, दृढ़, स्वामिभक्त, निराभिमानी, प्रियदर्शी तथा द्वेषरहित होना चाहिए।[30]

ललितादित्य के प्रकरण में एक कथा का वर्णन आता है कि मदिरापान के कारण उन्मत्त राजा द्वारा मन्त्री को प्रवरसेन द्वारा निर्मित नगर उसके परिहासपुर से अधिक सुन्दर होने की स्थिति में जला देने की आज्ञा दी जाती है। किन्तु मन्त्री के विवेक से वह नगर सुरक्षित रह जाता है। राजा ललितादित्य अपने मन्त्री मित्र शर्मा की दूरदर्शिता से प्रसन्न होकर उसे पञ्चविरुदों का अधिकारी घोषित करते हैं। उसी समय से प्राचीन कार्यस्थलों पर ये पाँच महाविरुद-महाप्रतिहारपीड़ा, महासान्धिविग्रह, महाअश्वशाला, महाभण्डागार, महासाधनभाग प्रयोग में आने लगे, जिन्हें राजवंश के लोग धारण किया करते थे।[31]

कल्हण ने स्थान-स्थान पर मन्त्रियों द्वारा राजा के निर्णय-परिवर्तन का उल्लेख किया है। रानी सुगन्धा तथा राजा कलश इसी कारण अपनी इच्छानुरूप उत्तराधिकारी चयन नहीं कर सके, क्योंकि इसके विरुद्ध थे। तथापि मन्त्री राजा के व्यक्तित्व के अनुसार ही अपनी शक्तियों का उपयोग कर पाते थे।

इन विवरणों से स्पष्ट है कि राज्य में राजा के उपरान्त सर्वाधिक महत्ता मन्त्री-पद की ही थी। राजा अपने मन्त्रियों की सहायता से ही राज्यकार्य का सञ्चालन करता था। प्रत्येक कार्य से पूर्व राजा मन्त्रियों से परामर्श करता था तथा प्रायः उनके परामर्श का सम्मान भी करता था। विशेष परिस्थितियों में वह परामर्श ठुकराता था। राजा के अधिक प्रभावशाली होने पर मन्त्री राजा के अधीन और मन्त्री के योग्य तथा प्रभावशाली होने पर राजा मन्त्रियों के अधीन होता था। मन्त्री राजनैतिक, आर्थिक तथा धार्मिक सभी निर्णय में भाग लेते थे। इसकारण मन्त्रियों का बहुत महत्व था ।

न्याय (दण्ड) व्यवस्था- शास्त्रों ने राजा को न्याय का स्रोत माना था। डॉ. पी. वी. काणे के अनुसार मनु, वसिष्ठ, याज्ञ, विष्णु धर्मसूत्र, नारद स्मृति, शुक्रनीति, मानसोल्लास आदि में कहा गया है कि न्याय एवं शासन राजा का व्यक्तिगत कार्य या व्यापार है।[32] कल्हण ने राजा के लिए न्याय-पथ का आचरण अनिवार्य कहा है, क्योंकि यदि धर्म तथा अधर्म की विवेचना करने वाले शासक ही अन्याय पथ के अनुगामी होंगे तो प्रजा को न्यायपथ पर आरूढ़ कौन करेगा-

ये द्रष्टारः सदसतां ते धर्मविगुणाः क्रियाः ।
वयमेव विदध्मश्चेद्यातु न्याय्येन कोऽध्वना।।[33]

कल्हण के अनुसार राजा को तथ्यों के आश्रित होकर ही न्याय करना चाहिए क्योंकि न्यायप्रिय शासक के राज्य में निर्दोष पुरुष के वध और अकाल मृत्यु का विषय राजा के लिए लोकपवाद का कारण होता है।[34] इस कारण राजा के लिए मृदु और कठोर दोनों ही नीतियों का प्रयोग आवश्यक कहा गया है। यदि किसी प्रसङ्ग में सन्देह हो तो राजा को क्षमानीति का आश्रय लेना चाहिए, किन्तु जिस वाद में पक्ष-विपक्ष दोनों अनीति के पथ पर हो, उसमें शासक को यमतुल्य कठोर व्यवहार करना चाहिए-

विवादे संदिहानस्य युक्तं क्षान्त्यानुशासनम्।
भाव्यं दण्डधराचारैः प्रयुक्तकृसृतेः पुनः।।[35]

काश्मीर राजसभा में सभी अभियोगों का निर्णय न्यायाधीश करते थे लेकिन जिन विषयों का निर्णय करने में वे असमर्थ थे, उनका निर्णय राजा करता था। किसी निर्णय के विरुद्ध यही सबसे बड़ा न्यायालय था। उन विशेष अभियोगों को राजा अपनी सभा में बैठकर उन न्यायाधीशों के समक्ष सुनता था जो पहले उसे सुन चुके होते थे। राजा न्यायाधीशों, सभ्यों तथा मन्त्रियों के मध्य सभा में धर्मासन पर बैठ कर निर्णय करता था।[36]

शुक्र तथा अन्य अर्थनीति प्रणेता आचार्यों ने सभ्यों की संख्या का उल्लेख किया है। शुक्राचार्य के अनुसार राजा या न्यायाधीश भी तीन, पाँच या सात सभासदों के अनुपस्थिति में कोई भी निर्णय नहीं कर सकता। राजतरङ्गिणी में सभ्यों का सन्दर्भ तो है किन्तु उनकी संख्या का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

कात्यायन ने लिखा है कि जो राजा-न्यायाधीशों, मन्त्रियों, विद्वानों, ब्राह्मणों, पुरोहितों तथा सभासदों की उपस्थिति में अभियोगों का निरीक्षण-परीक्षण करता है उसे स्वर्ग प्राप्त होता है। कल्हण ने राजा के न्यायालय हेतु धर्मासन शब्द का प्रयोग किया है, जबकि क्षेमेन्द्र द्वारा प्रयुक्त धर्माधिकरणादिविर, आस्थानदिविर, अधिकरणद्विज, आस्थान-भट्ट शब्दों से स्पष्ट होता है कि इसको धर्माधिकरण, अधिकरण और आस्थान कहने की परम्परा थी।

राज्य में अपराधियों को उनके अपराध के अनुसार सामान्य या भयङ्कर दण्ड दिए जाते थे। दण्ड-विधान का उद्देश्य राज्य में व्याप्त अपराधों का अन्त कर राज्य का शान्तिपूर्ण सञ्चालन था।

बल (सेना)- सेना को राज्य के सात अङ्गों में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कोई भी राष्ट्र सैन्यशक्ति के बिना सुरक्षित नहीं रह सकता। सैन्यशक्ति ही राज्य की स्थापना का आधार होती है और सैन्यबल

द्वारा ही राज्य की रक्षा की जा सकती है। शुक्र के अनुसार मनुष्य व चाणक्य भी सेना की महत्व को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि सैन्यबल से ही दूसरे की सेना को अपनी ओर किया जा सकता है और सैन्यवृद्धि की जा सकती है-

दण्ड मूलो हि मित्रमित्र निग्रहः ।
परदण्डोत्साहनं स्वदण्ड प्रतिग्रहश्च ।।[37]

सैन्यबलयुक्त राजा के मित्र तो मित्र रहते हैं पर शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। काश्मीर में रचित संस्कृत के महाकाव्यों में सेना के महत्व अनेकों श्लोकों एवं अनेकों स्थलों पर प्रतिपादित मिलते हैं। भारतीय सेना के चार पारम्परिक अङ्ग माने गये हैं- पैदल, अश्वसेना, गजसेना तथा रथ। पूर्वाचार्यों ने भी सेना के यही चार अङ्ग माने हैं। इसलिए सेना को चतुरङ्गिणी अथवा चतुरङ्गबला कहा जाता था। कौटिल्य ने गज सेना को प्रथम स्थान दिया है तत्पश्चात् क्रमशः रथ, अश्व तथा पदाति सेना को।[38]

काश्मीर के संस्कृत महाकाव्यों में भी सेना के अङ्गों का वर्णन है। कल्हण की राजतरङ्गिणी में सेना चार अङ्गों में विभाजित है- हस्ती, अश्व, पदाति एवं रथ।[39] रथों का प्रयोग अथवा रथों का उल्लेख प्रायः कम मिलता है। इसके अतिरिक्त शेष तीनों अङ्गों के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। भौगोलिक परिस्थितयों के कारण कदाचित् रथ का अल्प प्रयोग होता हो। इसके स्थान पर हमें एक अन्य प्रकार के रथ- कार्णिरथ का उल्लेख प्राप्त होता है, जो मनुष्यों के द्वारा कन्धों पर ढ़ोया जाता था। राजा ललितादित्य की सेना में सवा लाख, वहीं जयपीड़ के पास अस्सी हजार कार्णिरथ थे।[40] राजा जयसिंह के विरुद्ध राजकुमार भोज डामरों की सहायता से राजा के सैनिक पड़ाव तक कार्णिरथ से ही पहुँचा था। स्पष्ट है कि कार्णिरथ-काश्मीर की दुर्गम पहाड़ी मार्गों में जहाँ अश्ववाहन का सञ्चालन कठिन होता रहा होगा, सदृश वाहन उपयुक्त रहे होंगें।

राजतरङ्गिणी में एकाङ्ग नामक सैनिक वर्ग का विवरण प्राप्त होता है जो नियुक्ति तथा कार्यों में राजा की स्थायी सेना सा प्रतीत होता है। इनका उल्लेख सर्वप्रथम रानी सुगन्धा के राज्यकाल में मिलता है, जिनकी मदद से उन्होंने दो वर्षों तक शासन किया।[41] ये राज्य के वेतनभोगी सैनिक के रुप में कार्य करते थे। सेना के अठारह विभागों में से एक तन्त्रिन थे। सेना की अन्य टुकड़ियों के साथ इनके सैन्य अभियान में जाने का उल्लेख है।

दुर्ग- दुर्ग भी राज्य के सप्ताङ्गों में महत्वपूर्ण स्थान रखता था । राष्ट्र की रक्षा का प्रधान आधार दुर्ग ही होते थे। काश्मीर नरेश दुर्ग का उपयोग आपत्ति के समय भी करते थे। कल्हण, जोनराज, श्रीवर एवं शुक कृत राजतरङ्गिणियों में दुर्गों का सन्दर्भ मिलता है। युद्ध-बाहुल्य के कारण दुर्गों का विशेष महत्व था।

कल्हण की राजतरङ्गिणी में पृथ्वीगिरि, स्वापिक, दुर्गघात, शिलिका, घुड़ावन,लहरगिरि, कर्णाह, बाणशाला, जयपुर आदि दुर्गों का और जोनराज राजतरङ्गिणी में रामकोट, अन्दरकोट तथा सुल्हण दुर्ग का उल्लेख मिलता है। इन सबमें लोहर दुर्ग बहुत प्रसिद्ध था। कल्हण, जोनराज, श्रीवर, शुक तथा बिल्हण सभी ने लोहर कोट का उल्लेख किया है।

पशुओं का अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित समूह सेना है।

क्षत्रियों के लिए धर्मयुद्ध सर्वोत्तम माना गया है। कल्हण ने युद्ध में कतिपय तीव्र-शस्त्रों का उपयोग अवैध तथा मृत सैनिक पर प्रहार को निन्दनीय माना है। जो राजा युद्ध में वीरगति को प्राप्त करता था, उसे वीरस्वर्ग या नायकों को स्वर्ग मिलता था। क्षेमेन्द्र ने भी युद्धभूमि में मरने वाले नायकों की प्रशंसा की है। जो इन कर्त्तव्यों का पालन नहीं करते थे, उनके जीवन को तिरष्कृत माना जाता था। कष्ट के उपस्थित होते ही भयभीत होना कायरों का काम है। धैर्यशाली वीरपुरुषों का नहीं।[42]

निष्कर्ष-

राजतरङ्गिणी में धर्मशास्त्र के विषयों की विस्तृत व्याख्या करते हुए राजा, उसका कर्तव्य, मन्त्री एवं राजदरबार की स्थिति, न्याय-व्यवस्था तथा सुरक्षा आदि स्पष्ट किया गया है। जोनराज आदि ने सुल्तानों की कार्यशैली भी व्याख्यायित की है। सम्पूर्ण विवरणों से यह ज्ञात होता है कि सुल्तानों के शासनकाल में राजतन्त्र निरङ्कुश होने लगा था। काश्मीर में प्रजा द्वारा राजा के चुनाव का अधिकार आधुनिक लोकतन्त्र के स्वरूप को प्रतिबिम्बित करता है। मन्त्रियों की स्थिति अत्यधिक प्रभावशाली थी एवं राजव्यवस्था के सञ्चालन में इनका योगदान महत्वपूर्ण था। शासन का मुख्य उद्देश्य प्रजा की सुरक्षा तथा उनके उत्कर्ष में निहित था। न्याय एवं सैन्य-व्यवस्था इस उद्देश्य की पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती थी। इस प्रकार बाह्य-आक्रमणों से त्रस्त होकर यह भूभाग भारतीय बौद्धिक-परम्परा में अपनी उत्कृष्ट भूमिका निभाता रहा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. राजतरंगिणी, रघुनाथ सिंह, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1970
2. जोनराज की राजतरङ्गिणी, डॉ. रघुनाथ सिंह, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-1, 1972
3. श्रीवर कृत जैन-राजतरङ्गिणी, डॉ. रघुनाथ सिंह, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2013
4. शुक कृत राजतरङ्गिणी एवं राजतरङ्गिणी संग्रह, डॉ रघुनाथ सिंह, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-1, 1976
5. शुक्रनीतिः, श्री पण्डित ब्रह्मशंकर मिश्रा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-1, 1968
6. मनुस्मृतिः, पण्डित गिरिजा प्रसाद द्विवेदी, मुंशी नवलकिशोर सी. आई. का छापाखाना, लखनऊ, 1917
7. कौटिल्य अर्थशास्त्र, श्रीयुत प्राणनाथ विद्यालङ्कार, मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर, 1923
8. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी. वी. काणे, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ, 1900

सन्दर्भ सूची

[1] शिष्योऽस्य जोनराजस्य सोऽहं श्रीवर पण्डितः। श्रीवर राज. 1:1:7
[2] शुक्रनीति 1/61
[3] कल्हण राज. 2 /120

[4] कल्हण राज. 8/2757

[5] श्रीवर राज. 4/448

[6] मनु. 7/27-28

[7] कल्हण राज० 1/70-73

[8] स्वविक्रमकथास्तोत्ररोमन्थप्रियताहृतः।
सोऽभवद्विटबन्द्यादिचाटुकारविधेयधीः ।।
आत्मानं दैवतमिव स्तुतिमोहितचेतसः।
जानतः प्राभवंस्तस्य विवेकविगुणाः क्रियाः।।

कल्हण राज. 5/352-353

[9] कल्हण राज०, 8/2288, 3328

[10]अचित्रवस्त्रो निमभूषणोऽल्पपरिच्छदः ।
ददृशे विगतोत्तापे न कश्चिद्राजमन्दिरे ।। कल्हण राज०, 7/881

[11]जौनराज० 13:44

[12]अन्योत्कर्षानपि वदन्प्रसङ्गेन निराग्रहः।
स्वविधाद्योतकः सोऽभूत्सभ्यानां हृदयंगमः। कल्हण राज. 3/158

[13]तापसैर्भस्मरूद्राक्षजटाजूटाडिकतैर्वभौ ।
तस्य माहेश्वरी पर्यदिव भूमिपते सभा। कल्हण राज, 2/127

[14]कल्हण राज., 2/159

[15]कल्हण राज. 3/139-140

[16]कल्हण राज. 2/127, 159, 3/139,146,158,204 4/495, 5/361

[17]जौनराज. 3:170

[18]जौनराज 3:142

[19]यदि धर्माधिया कश्चित् प्रवृतो दीनरक्षणे ।
स तन्महत्तरै राजसदस्याप खलीकृतिम् ।। जौनराज. 4:377

[20]कौ० अर्थ. 1/3/6/3

[21]कौ० अर्थ.

[22]कल्हण राज. 7 /1451

[23]कल्हण राज. 2/48

[24]इत्युक्तवति भूपाले प्रेषितो मन्त्रिपर्षदा ।
राज्ञी कृतज्ञभावेन साऽपि मन्त्रि सभान्तरे।।

कल्हण राज. 4/61 एवं 6/261

[25]कल्हण राज. 8/2504

[26]आसतां क्षितिपामात्यी तौ द्वावपि परस्परम्।
आज्ञादाने परिवृढो भृत्यावाज्ञापरिग्रहे ।। कल्हण राज. 5/3

[27]स्वामी क्षमी कृतक्षश्च मन्त्री भक्तः समयोज्झितः ।
संयेगोऽयं प्रजापुण्यैः सुचिरेण निरीक्षतः ।। श्रीवर राज. 3/34

[28]निग्रहानुग्रहाधायिमन्त्रज्ञं गुणराहुलम्।
स प्रापत् सचिवं मित्रं कपीन्द्रमिव राघवः ।। जोनराज राज. 69
सर्वासामेव बुद्धिनामुपरीश्रवरबुद्धयः ।
तथापि सचिवैर्वाच्चो हिताहितविनिर्णयः ।। जोनराज राज., 499

[29]कल्हण राज. 1/119

[30]कौ. अर्थ. 1/9

[31]महाप्रतीहारपीड़ा स महासंधिविग्रहः।
महाश्वशालापि महाभाण्डागारश्च पंचमः ।।
महासाधनभागश्चेत्येता यैरभिधाः श्रिताः।
शाहिमुख्या येष्वभवन्नध्यक्षाः पृथिवी भुजः ।।

कल्हण राज. 4/142-43

[32]धर्मशास्त्र का इतिहास, पी वी काणे, भाग 2, पृ. 703

[33]कल्हण राज. 4/60

[34]त्वयि प्रशासति महीमहो गर्हानिबर्हणे।
सुखसुप्तस्य मे पत्युर्हतं केनापि जीवितम् ।।
एषैव महती लज्जा सदाचारस्य भूपतेः ।
यदकालभवो मृत्युस्तस्य संस्पृशति प्रजाः।। कल्हण राज.. 4/83-84

[35]कल्हण राज. 8/148

[36]कल्हण, राज., 6/28, 31, 8/152
जोनराज, राज 190, 807,958, 959

[37]कौ. अ. 8/1

[38]कौ. अ. 9/2

[39]नरनागाश्वबहुलं तथा सैन्यं महीपतेः।
प्रवृद्धया लाव्यमानं क्षणात्संक्षयमाययौ।। कल्हण राज. 4/541
रथांगाक्रन्दिनी रात्रिस्तेषां कृच्छ्रेण साऽगमत्।

कल्हण राज. 8 /2612

[40]कर्णीरथानां तस्यासीत्सपादं लक्षमीशितुः
अशीतिस्तु सहस्राणि देवस्याद्य जयोद्यमे ।। कल्हण राज. 4/407

[41]कल्हण राज. 5/250-261

[42]कल्हण राज. 4/411, 6/220, 238, 8/1886, 2073, 2322, 2719, 2514, 219